ISSN: 0974-8849
दार्शनिक त्रैमासिक अभिनिर्देशित (Peer Reviewed)
UGC Care Listed Journal :Group-I, Sl. No. - 4
वर्ष–67, अंक–3, जुलाई–सितम्बर, 2021

विश्लेषणात्मक दर्शन का उद्‌भव एवं विकास

प्रियान्शु अग्रवाल*

सारः–

प्रस्तावित शोध–पत्र विश्लेषणात्मक दर्शन के उद्‌भव, विकास एवं स्वरूप का विवेचन एवं विश्लेषण हैं। विश्लेषणात्मक दर्शन किस प्रकार नवीन परम्परा के रूप में समकालीन पाश्चात्य दर्शन में उदित होता है एवं यह किस प्रकार से दार्शनिक विचारों में परिवर्तन लाता है इसकी व्याख्या करना इस शोध–पत्र का प्रमुख उद्‌देश्य है। साथ ही प्राचीन एवं समकालीन दृष्टिकोणों में विश्लेषण की प्रकृति को लेकर क्या भिन्नता है जो विश्लेषणात्मक दर्शन को दर्शनशास्त्र की अन्य शाखाओं से पृथक करता है। इस क्रम में शोध–पत्र में विश्लेषणात्मक दर्शन के विकास को तीन चरणों में विभक्त किया गया है। प्रथम चरण 'प्रारम्भिक विश्लेषणात्मक दर्शन' के अन्तर्गत रसेल एवं मूर द्वारा प्रत्ययवाद के विरुद्ध नव्य–यथार्थवाद के प्रतिपादन की चर्चा की गयी है। तदुपरान्त, द्वितीय चरण 'तार्किक विश्लेषणात्मक दर्शन' के अन्तर्गत रसेल, पूर्ववर्ती विट्‌गेन्सटाइन एवं तार्किक भाववादियों के मतों की विवेचना की गई है। तृतीय चरण 'भाषाई विश्लेषणात्मक दर्शन' के अन्तर्गत परवर्ती विट्‌गेन्सटाइन, कैम्ब्रिज साधारण भाषा दर्शन एवं ऑक्सफोर्ड साधारण भाषा दर्शन का विवेचन एवं मूल्यांयन किया गया है।

कुंजी शब्दः–

विश्लेषण, विश्लेषणात्मक दर्शन, तार्किक अणुवाद, आदर्श भाषा, तार्किक भाववाद, साधारण भाषा।

परिचयः–

विश्लेषणात्मक दर्शन दर्शनशास्त्र की एक महत्वपूर्ण शाखा है, जिसका

* **शोध–छात्र (जे0आर0एफ) – यू0जी0सी0, दर्शनशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज–211002.**

संबंध विश्लेषण से है जोकि पाश्चात्य जगत में ख्यातिलब्ध है। विशेषत: आंग्ल-भाशी देशों जैसे- ग्रेट ब्रिटेन, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड एवं स्कैंडिनेविया आदि में। विश्लेषणात्मक दर्शन का आरम्भ बीसवीं शताब्दी से माना जाता हैं, जिसके प्रमुख दार्शनिकों में कई विश्लेषणवादी दार्शनिक हैं जैसे- गॉटलबफ्रेगे, बर्ट्रेंडरसेल, जी0ई0 मूर, लुड़विगविट्‌गेन्सटाइन, रूडोल्फकार्नाप, ए0जे0 एयर, जे0एल0 आस्टिन, डब्लू0वी0ओ0 क्वाइन, जे0आर0 सर्ल आदि।

प्रश्न उठता हैं कि विश्लेषणात्मक दर्शन क्या हैं? विश्लेषणात्मक दर्शन वस्तुत: विश्लेषण से अपना नाम प्राप्त करता हैं। विश्लेषणवादी दार्शनिकों का मानना है कि यदि आप कुछ समझना अथवा जानना चाहते हैं तो आपको इसके मूलभूत अंग पर शोध करने की आवश्यकता हैं। इसके उपरान्त यह प्रश्न सार्थक होता है कि विश्लेषण क्या हैं? किसी विषय-वस्तु को उसकी संरचना से अवगत होकर समझने की पद्धति ही विश्लेषण हैं। हालांकि विश्लेषण का आरम्भ सुकरात के दर्शन से होता हैं किन्तु जी0ई0 मूर ऐसे पहले दार्शनिक थे, जिन्होंने अपना सम्पूर्ण सिद्धान्त विश्लेषण की पद्धति पर आधारित किया। व्यापकत:, विश्लेषण के दो प्रकार हैं- पहला, भाषा का विश्लेषण और दूसरा, अवधारणा का विश्लेषण। सभी सम्भावनाओं में, विश्लेषण शब्द का प्रयोग भाषाई विश्लेषण के रूप में किया जाता हैं। हालांकि, मूर ने इसे अवधारणा के विश्लेषण के अर्थ में प्रयोग किया हैं। उनका मानना था कि हम कभी भी भाषा का विश्लेषण नहीं करते हैं, अपितु केवल अवधारणा का विश्लेषण करते हैं।

अब प्रश्न उठता हैं कि विश्लेषण से उनका क्या तात्पर्य हैं? इस प्रश्न का उत्तर देना सरल कार्य नहीं हैं। मूर स्वीकार करते हैं कि विश्लेषण की प्रक्रिया में विश्लेषक (Analysans) एवं विश्लेष्य (Analysandum) दोनों अवधारणाओं में समान किन्तु अभिव्यक्तियों में भिन्न होते हैं, उदाहरण के लिए 'एक भाई' और 'एक सहोदर भाई'। ये दोनों शब्द अवधारणात्मक रूप में समान है किन्तु अभिव्यक्तियों में भिन्न हैं। इस कारण एक सहोदर भाई, भाई का उचित विश्लेषण हैं। यहाँ यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि विश्लेषण की प्रक्रिया में यदि भाषा साथ ही साथ अवधारणा समान हैं तो यह किसी भी प्रकार से विश्लेषण नहीं होगा, यह अनिवार्यत: दोषग्रस्त होगा, उदाहरण के लिए 'एक भाई भाई हैं'। इस कथन में अवधारणा साथ ही साथ अभिव्यक्ति दोनों समान हैं इसलिए, यह वास्तविक विश्लेषण नहीं हैं अपितु 'विश्लेषण का विरोधाभास'

(Paradox of Analysis) हैं। मूर के विश्लेषण का कमजोर बिन्दु यह हैं कि वे अर्थ और विश्लेषण के मध्य अन्तर नहीं कर सके और उन्होंने माना कि अर्थ एवं विश्लेषण दोनों का सम्बन्ध अवधारणा से हैं जबकि, वास्तव में अर्थ का सम्बन्ध अवधारणा से है किन्तु विश्लेषण का संबंध अवधारणा से न होकर भाषा से है। इस प्रकार विश्लेषण का अर्थ है भाषा का विश्लेषण। नि:सन्देह, कई दार्शनिक परम्पराएं विश्लेषण का प्रयोग करती हैं किन्तु, विश्लेषणात्मक दर्शन की कार्यप्रणाली भिन्न है जो कि कुछ विशिष्टताओं को समाहित करती हैं। पहला, विश्लेषणवादी दार्शनिक विश्लेषण के समस्त रूपों का प्रयोग नहीं करते हैं अपितु वे मुख्यत: तार्किक एवं भाषाई विश्लेषण का प्रयोग करते हैं। दूसरा, वे यह अस्वीकार करते हैं कि महाद्वीपीय दर्शन (Continental Philosophy) में प्रचलित अन्य पद्धतियों का प्रयोग करना आवश्यक हैं।

अब यह प्रश्न उठना स्वाभाविक हैं कि क्या विश्लेषणात्मक दर्शन एवं महाद्वीपीय दर्शन में समानता हैं? यदि समानता नहीं हैं तो दोनों में कौन सी विषमता हैं? सामान्यत: विश्लेषणात्मक दर्शन और महाद्वीपीय दर्शन में समानता परिलक्षित नहीं होती हैं क्योंकि जब हम महाद्वीपीय दर्शन कहते हैं तो इसका तात्पर्य है कि बीसवीं शताब्दी के समस्त यूरोपीय दार्शनिक सम्प्रदाय, विश्लेषणात्मक दर्शन को छोड़कर। विश्लेषणात्मक दर्शन एवं महाद्वीपीय दर्शन में, जब वे दार्शनिक विचारों के निर्माण के उचित दृष्टिकोण को समझने के लिए उपस्थित होते हैं तब एक अन्तर परिलक्षित होता हैं। महाद्वीपीय दर्शन में मुख्यत: संश्लेषणात्मक विधि से प्रश्न संबोधित किए जाते हैं, जबकि विश्लेषणात्मक दर्शन का सीधा संबंध विश्लेषण से हैं। विश्लेषणवादी दार्शनिक न केवल दार्शनिकता को तार्किक सुसंगतता और स्पष्ट एवं दृढ़तापूर्ण तर्क के रूप में अथवा सैद्धान्तिक तर्क के निर्माण की प्रक्रिया के रूप में व्याख्यायित करते हैं, अपितु इसी तरह से उसका अभ्यास भी करते हैं। यही कारण हैं कि अनेक विचारक जोर देते हुए कहते हैं कि विश्लेषणात्मक दर्शन दार्शनिकता की एक विशिष्ट शैली हैं जो कि महाद्वीपीय दर्शन की शैली से भिन्न हैं।

पुन: अब यह प्रश्न उठता हैं कि विश्लेषणात्मक दर्शन की व्युत्पत्ति किस कारण से होती हैं और कब होती हैं? उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में यूरोपीय दर्शन के प्रमुख सिद्धान्तों (जैसे -प्रत्ययवाद) में जटिलता एवं तार्किक अनिश्चितता के कारण एक बौद्धिक विद्रोह के फलस्वरूप विश्लेषणात्मक दर्शन की व्युत्पत्ति होती हैं। ध्यातव्य हो कि पाश्चात्य दर्शन के इतिहास में विश्लेषण

की परम्परा ग्रीक दर्शन के साथ आरम्भ होती हैं किन्तु प्राचीन एवं समकालीन दृष्टिकोणों में विश्लेषण की प्रकृति में कुछ मूलभूत अन्तर हैं। प्राचीन दार्शनिक मूलत: तत्वमीमांसक थे, जिन्होंने वास्तविकता के ज्ञान को प्राप्त करने के साधन के रूप में विश्लेषण का प्रयोग किया; जबकि समकालीन दार्शनिक स्वभावत: विश्लेषणवादी हैं, जिनका मानना हैं कि वास्तविकता का ज्ञान प्राप्त करना दार्शनिकों का नहीं अपितु वैज्ञानिकों का कार्य हैं इस कारण उनका मानना हैं कि तत्वमीमांसीय कथन निरर्थक हैं और साथ ही दार्शनिकों का कार्य केवल भाषा का विश्लेषण करना हैं। यद्यपि विश्लेषणात्मक दर्शन की व्युत्पत्ति के काल को लेकर दार्शनिकों में विभिन्न मत प्रचलित हैं। एंथोनीक्विंटन का मानना है कि विश्लेषणात्मक दर्शन का आरम्भ 1912 में कैम्ब्रिज में रसेल के साथ अध्ययन करने आये विट्‌गेन्सटाइन के आगमन से होता हैं।[1] जबकि प्रोफेसर पीटर सिमन्स नें महाद्वीपीय दर्शन एवं विश्लेषणात्मक दर्शन के मध्य विसंगति के काल 1899 को प्रारम्भिक बिन्दु के रूप में चुना।[2] प्रोफेसर ऑलेक्ज़ेंडरकुल" लिखते हैं कि अपनी आत्मकथात्मक पुस्तक 'माई फिलासॉफ़िकल डेवलेपमेन्ट' (My Philosophical Development) में बर्ट्रेंड रसेल कहते हैं कि 1898 के अन्त में, उन्होंने और जार्जमूर ने हेगेल एवं ब्रेडले जैसे दार्शनिकों के सिद्धान्तों के खिलाफ विद्रोह किया।[3]

अनेक विश्लेषणवादी दार्शनिक फ्रेगे को विश्लेषणात्मक दर्शन का प्रमुख पूर्वज मानते हैं। जैसा कि अलॉयसियसमार्टिनिच कहते हैं कि गॉटलबपाश्चात्येगे ने परिशुद्धता (Rigor) के नये मानकों को प्रस्तुत किया जिससे विश्लेषणात्मक दर्शन ने अपना रास्ता तैयार किया।[4] इसके अतिरिक्त, माइकलडमेट ने फ्रेगे को विश्लेषणात्मक दर्शन का पितामह कहा।[5] इसी प्रकार फ्रेगे के योगदान के संदर्भ में विट्‌गेन्सटाइन स्वीकार करते हैं कि न केवल रसेल की रचनाओं ने अपितु फ्रेगे के महान कार्यों ने उनमें विचार करने की क्षमता को जागृत किया। फ्रेगे प्रमुख गणितज्ञों, तर्कशास्त्रियों एवं दार्शनिकों में से एक हैं, जिनके विचार विश्लेषणात्मक दर्शन के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं, उदाहरण के तौर पर उनका विचार था कि अर्थ का सिद्धान्त सभी दार्शनिक गवेशणाओं का आधार हो सकता हैं।[6]

अत: इस प्रकार विश्लेषणात्मक दर्शन को जिसका आरम्भ बीसवीं शताब्दी से होता है, हम तीन चरणों में विभक्त कर सकते हैं- प्रारम्भिक विश्लेषणात्मक दर्शन, तार्किक विश्लेषणात्मक दर्शन एवं भाषाई विश्लेषणात्मक दर्शन।

1. प्रारम्भिक विश्लेषणात्मक दर्शनः-

प्रथम विश्व युद्ध के पूर्व दो प्रतिष्ठित दार्शनिकों बर्ट्रेंड रसेल और जी0ई0 मूर ने यथार्थवाद सिद्धान्त को अपनी रचनाओं में वर्णित किया, तत्पश्चात् क्रमशः अपनी पुस्तकों 'प्रॉब्लम ऑफ फिलासफी' (1912) एवं 'सम मेन प्रॉब्लम्स ऑफ फिलासफी' (1953) में प्रस्तुत किया। उन्होंने हेगेल, ब्रेडले, ग्रीन और अन्य प्रत्ययवादी दार्शनिकों के प्रत्ययवाद के विरोध के परिणामस्वरूप अपने सिद्धान्त को उद्घाटित किया। मूर और रसेल के पूर्व प्रत्ययवाद अपने चरम पर था, जिसका आधारभूत सिद्धान्त अमूर्त प्रत्ययों का सिद्धान्त था, जो कि अत्यन्त जटिल एवं सामान्य ज्ञान का विरोधी था। इस कारण दर्शनशास्त्र सामान्य मनुष्य की पहुँच से दूर हो गया था। मूर का मानना था कि हमारी दैनिक भाषा अथवा साधारण भाषा सही विचार करने के लिए, तत्वमीमांसको की कृत्रिम भाषा की अपेक्षा अधिक उपयुक्त हैं।[7] मूर और रसेल ने अपने संयुक्त प्रयासों से अनुभव पर आश्रित सिद्धान्त को प्रस्तुत किया, जिसे सामान्यतः नव्य-यथार्थवाद (Naive-Realism) नाम से जाना जाता हैं। यद्यपि प्रथम विश्वयुद्ध की शुरुआत के साथ ही अनेक दार्शनिक युद्ध में सम्मिलित हो गए, जिसके कारण शैक्षणिक कार्य अत्यधिक प्रभावित हुआ।

2. तार्किक विश्लेषणात्मक दर्शनः-

प्रथम विश्वयुद्ध के समाप्ति के दौरान दार्शनिक पद्धति अत्यन्त अलग शैली में विकसित हुई, जिसे 'तार्किक विश्लेषण' के नाम से अभिहित किया जाता हैं। इस चरण में, रसेल ने पूर्ववर्ती विट्गेन्सटाइन के साथ 'तार्किक अणुवाद' (Logical Atomism) के सिद्धान्त को निरूपित किया, यह नाम रसेल ने 1918 में अपने व्याख्यानों में दिया जिसे बाद में विट्गेन्सटाइन ने अपनी ख्यातिलब्ध पुस्तक ट्रैक्टेटस लॉजिको-फिलासॉफ़िकस (Tractatus Logico-Philosophicus)मेंअत्यधिक विस्तारपूर्वक प्रस्तुत किया जो कि 1921 में प्रकाशित हुई थी किन्तु, वास्तविक अर्थ में विश्लेषणात्मक दर्शन का आरम्भ 1905 में माइंड नामक पत्रिका में प्रकाशित रसेल के सुप्रसिद्ध आलेख 'ऑनडिनोटिंग' (On Denoting)में वर्णित विवरण सिद्धान्त (Theory of Description) के साथ हुआ। रसेल का मानना था कि हमारी साधारण भाषा संदिग्ध, अनिश्चित और अस्पष्ट है, इसलिए हम साधारण भाषा के तार्किक और व्याकरणिक रूप के मध्य अन्तर नहीं कर सकते, उदाहरण के लिए 'स्कॉटवैवर्ली का लेखक है', इस वाक्य में दो शब्द हैं - स्कॉट और वैवर्ली का लेखक।

वैवर्ली स्कॉट द्वारा लिखित पुस्तक का नाम है जब कि स्कॉट एक व्यक्तिवाचक नाम है। प्रश्न यह है कि वैवर्ली के लेखक का अर्थ क्या है? यदि यह स्कॉट का एक नाम है तो ऐसी परिस्थिति में 'वैवर्ली का लेखक' 'स्कॉट' के बराबर होगा और यह वाक्य कि 'स्कॉट वैवर्ली का लेखक है' एक पुनर्कथन होगा। यदि हम स्वीकार करते हैं कि वैवर्ली के लेखक का नाम स्कॉट नहीं है तो यह एक व्याघाती कथन होगा। यहाँ पर रसेल स्पष्ट करते हैं कि स्कॉट की भांति वैवर्ली का लेखक एक व्यक्तिवाचक नाम नहीं है अपितु स्कॉट का वर्णन है। उपरोक्त उदाहरण एक जटिल वाक्य है जो कि तीन साधारण वाक्यो को समाविष्ट करता हैं–

i. कम से कम एक व्यक्ति है जिसने वैवर्ली लिखा।
ii. अधिक से अधिक एक व्यक्ति है जिसने वैवर्ली लिखा।
iii. जिस किसी व्यक्ति ने वैवर्ली लिखा वह स्कॉट है।

रसेल का मानना है कि साधारण भाषा के स्तर पर इसके तार्किक और व्याकरणिक रूप में अन्तर नहीं किया जा सकता है किन्तु विश्लेषण की प्रक्रिया के द्वारा यह स्पष्ट किया जा सकता है कि इसके तार्किक और व्याकरणिक रूप पूर्णत: भिन्न–भिन्न हैं। इस प्रकार रसेल ने दार्शनिक समस्याओं के समाधान हेतु साधारण भाषा के स्थान पर आदर्श भाषा का समर्थन किया, साथ ही पूर्ववर्ती विट्‌गेन्सटाइन ने भी रसेल द्वारा सुझाए गए विश्लेषण की प्रक्रिया को स्वीकार किया। पूर्ववर्ती विट्‌गेन्सटाइन अपनी पुस्तक 'ट्रैक्टेटस' मेंकुछ इस प्रकार लिखते हैं कि जगत वह सब कुछ है जो तथ्य हैं (The World is all that is the Case।[8] इसी क्रम में वे कहते हैं कि जगत तथ्यों में विभाजित हैं (The World divides into facts)।[9] पुन: वे इसे स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि वस्तुस्थितियों के अस्तित्व को ही तथ्य कहते हैं (What is the case- a fact- is the existence of state of affairs)।[10] इसी प्रकार वे विश्लेषण करते हुए आगे बढ़ते हैं और कहते हैं कि तथ्यों का तार्किक चित्रण विचार हैं। (Logical picture of facts is a thought)।[11] तदुपरान्त वे कहते हैं कि विचार एक अर्थ में एक प्रतिज्ञप्ति हैं। (Thought is a proposition with a sense)।[12] इसी क्रम में विट्‌गेन्सटाइन कहते हैं कि प्रतिज्ञप्ति वास्तविकता का चित्रण हैं। (Proposition is picture of Reality)[13] एवं एक प्रतिज्ञप्ति प्राथमिक प्रतिज्ञप्ति की सत्यता फलन है। (Proposition is a truth-function of Elementary Propositions)[14] आदि।

इसके अतिरिक्त, विश्लेषण की इस प्रक्रिया को 'तार्किक भाववादियों' के द्वारा भी स्वीकार किया गया, जिसके प्रमुख सदस्य मोरिजश्लिक, ऑटोन्यूरॉथ, रूडोल्फ कार्नापवियना में और ए0जे0 एयर ऑक्सफोर्ड में थे। 1922 में श्लिक के नेतृत्व में यह आंदोलन वियना में आरम्भ हुआ, जो कि 1929 में व्यवस्थित ढंग से प्रॉग में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में विकसित हुआ। इसे तार्किक भाववाद अथवा तार्किक अनुभववाद अथवा तार्किक प्रत्यक्षवाद अथवा वैज्ञानिक प्रत्यक्षवाद नाम से भी जाना जाता है। इस आन्दोलन के दो मूलभूत उद्देश्य थे- पहला, तत्वमीमांसा का निरसन और दूसरा, विज्ञान की प्रतिस्थापना अथवा विज्ञान को आधार प्रदान करना। तार्किक भाववादियों का विश्लेषण तार्किक तथा उनके विश्लेषण का संबंध भाषा के विश्लेषण से था। विश्लेषणवादी दार्शनिकों के अनुसार, वास्तविकता का ज्ञान प्राप्त करना वैज्ञानिकों का कार्य हैं, दार्शनिकों का नहीं अपितु दार्शनिकों का मुख्य कार्य भाषा का विश्लेषण करना हैं।[15]

3.भाषाई विश्लेषणात्मक दर्शनः-

इस चरण में विश्लेषणात्मक दर्शन में एक नवीन परम्परा का उदय हुआ, जिसे 'भाषाई दर्शन' नाम से जाना जाता हैं। यहाँ यह जानना अनिवार्य हो जाता है कि भाषाई दर्शन (Linguistic Philosophy)और भाषा का दर्शन (Philosophy of Language)में भिन्नता हैं। जॉनसर्ल ने इन दोनो (भाषाई दर्शन एवं भाषा का दर्शन) के मध्य अन्तर को इस प्रकार स्पष्ट किया है कि भाषा का दर्शन भाषा की संरचना, प्रयोग और काम काज की सामान्य विशेषताओं का विवरण देने का प्रयास करता है जबकि, भाषाई दर्शन भाषाई पद्धतियों के प्रयोग द्वारा दार्शनिक समस्याओं का समाधान करने का प्रयास करता है।[16] उत्तरवर्ती विट्गेन्सटाइन के समय भाषाई दर्शन का चरण आरम्भ होता है। यहाँ, मैं स्पष्ट करना चाहूँगा कि पूर्ववर्ती विट्गेन्सटाइन ने साधारण भाषा द्वारा छिपी औपचारिक संरचना का विश्लेषण करके 'विचारों का तार्किक स्पष्टीकरण' देने का प्रयास किया, जबकि उत्तरवर्ती विट्गेन्सटाइन ने भाषाई विश्लेषण, साधारण भाषा के प्रयोग और विभिन्न शब्दों के उद्देश्य एवं कार्यों का विश्लेषण करते हुए दार्शनिक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास किया।

वास्तव में, साधारण भाषा दर्शन की प्रवृत्ति मूर के दर्शन के साथ शुरू हुई। हालांकि, विट्गेन्सटाइन ऐसे पहले दार्शनिक थे, जिन्होंने सर्वप्रथम साधारण भाषा को एक दार्शनिक पद्धति के रूप में व्यवस्थित ढंग से विकसित किया। प्रारम्भ में, अपने पूर्ववर्ती काल में विट्गेन्सटाइन ने आदर्श भाषा के पक्ष में तर्क

प्रस्तुत किया किन्तु अपने परवर्ती काल में उन्होंने अर्थ के चित्रण सिद्धान्त में कुछ विसंगतियों को पाया, जिसके कारण उन्होंने इस सिद्धान्त के स्थान पर एक अन्य सिद्धान्त का प्रतिपादन किया, जिसे 'प्रयोग-सिद्धान्त' अथवा 'संदर्भ सिद्धान्त' अथवा 'भाषाई खेल का सिद्धान्त' नाम से अभिहित किया जाता हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार एक शब्द अथवा एक वाक्य का कोई निश्चित एवं स्पष्ट अर्थ नहीं होता अपितु किसी शब्द का अर्थ उसके भिन्न-भिन्न प्रयोगों पर निर्भर होता हैं। यदि हम हमारे शब्दों को उनके उचित संदर्भों में प्रयोग करें तो कोई भी समस्या उत्पन्न नहीं होगी। विट्‌गेन्सटाइन के अनुसार दार्शनिक समस्याएँ तब उत्पन्न होती हैं जब भाषा छुट्‌टी पर चली जाती हैं (For Philosophical problems arise, when language goes on holiday)।[17] इसके अतिरिक्त वे कहते हैं कि जो भ्रम हमें घेरता है वह तब उत्पन्न होता है, जब भाषा एक निष्क्रिय इंजन की भांति होती है तब नहीं जब वह कार्य कर रही होती हैं।[18]

आगे चलकर, परवर्ती विट्‌गेन्सटाइन के पश्चात् साधारण भाषा दर्शन दो भिन्न-भिन्न दिशाओं में अग्रसर हुआ (कुछ दार्शनिकों ने विट्‌गेन्सटाइन का अनुसरण किया तो वहीं कुछ दार्शनिकों ने उनके सिद्धान्त में संसोधन किया। एक ओर दार्शनिकों का समूह जैसे-जॉनविजडम, एफ0 वेशमान, जी0ई0एम0 एन्सकाम्वे, नॉरमन मैल्कॉम और एम0 लैजेरोविट्‌ज आदि परवर्ती विट्‌गेन्सटाइन से सीधे तौर पर प्रभावित थे। इस कारण, उन्होंने कैम्ब्रिज में इस दृष्टिकोण को विकसित किया, जिसे 'कैम्ब्रिज साधारण भाषा दर्शन' नाम से जाना जाता हैं। तो वहीं दूसरी ओर, कुछ दार्शनिक जैसे-गिलबर्टराईल, जे0एल0 आस्टिन, एच0एल0ए0 हार्ट, सरस्टुअर्ट हैम्सफायर, आर0एम0 हेयर, जे0ओ0 अर्मसॉ, जी0जे0 वारनॉक आदि इस सिद्धान्त से अत्यधिक प्रभावित हुए। जिसके फलस्वरूप उन्होंने इस सिद्धान्त को ऑक्सफोर्ड में विकसित एवं संशोधित किया किन्तु अलग-अलग तरीको से। यह परम्परा 'ऑक्सफोर्ड साधारण भाषा दर्शन' के नाम से जानी जाती हैं। प्रोफेसर ऋषिकान्त पाण्ड़ेय इसका वर्णन करते हुए कहते हैं कि साधारण भाषा दर्शन पर ऑक्सफोर्ड दार्शनिकों का प्रभाव इतना अधिक अथवा तीक्ष्ण था कि कई लोग इस दृष्टिकोण और ऑक्सफोर्ड को पर्याय मानते थे।[19]

अब पुनः प्रश्न उठता हैं कि दोनों (कैम्ब्रिज एवं ऑक्सफोर्ड) परम्पराओं में कोई समानता हैं? अथवा कोई विषमता हैं? समानता की दृष्टि से हम दोनों परम्पराओं में तीन बिन्दुओं पर समानता देख सकते हैं; पहला, दोनों परम्पराएं आदर्श भाषा के खिलाफ हैं और वस्तुतः साधारण भाषा को व्यवस्थित

मानते हैं। दूसरा, दोनों परम्पराओं के दार्शनिकों का मानना हैं कि दार्शनिक समस्याएं भाषा के अनुचित प्रयोग के कारण उत्पन्न होती हैं। तीसरा, दोनों परम्पराओं के दार्शनिक इस बात को लेकर एकमत हैं कि तत्वमीमांसा निरर्थक हैं, यहाँ पर स्पष्ट करना आवश्यक है कि वे तत्वमीमांसा विरोधी नहीं थे अपितु उनका उद्देश्य तत्वमीमांसा को नजरअंदाज करके वास्तविक दार्शनिक समस्याओं का समाधान खोजना था। यदि हम विषमता की दृष्टिकोण से दोनो परम्पराओं का विवेचन करें तो उनमें तीन बिन्दुओं पर भिन्नता परिलक्षित होती हैं; पहला, परवर्ती विट्गेन्सटाइन एवं कैम्ब्रिज दार्शनिकों ने अपना दार्शनिक रुझान कुछ विशेष समस्याओं के अध्ययन के साथ शुरू किया, जबकि ऑक्सफोर्ड दार्शनिकों की रुचि दर्शन की सामान्य समस्याओं को हल करने में थी। दूसरा, परवर्ती विट्गेन्सटाइन ने स्वीकार किया कि दार्शनिक समस्याएं समस्या ही नहीं हैं अपितु मानसिक रोग अथवा दार्शनिक उलझन की भांति हैं इस कारण दर्शन का उद्देश्य उपचारात्मक है, जबकि ऑक्सफोर्ड दार्शनिकों का मानना हैं कि कुछ समस्याएं अवश्य उपचारात्मक हो सकती हैं किन्तु सभी समस्याएं नहीं, इसलिए दर्शन का उद्देश्य मात्र निषेधात्मक न होकर अपितु सकारात्मक अथवा सृजनात्मक भी हैं। तीसरा, परवर्ती विट्गेन्सटाइन एवं कैम्ब्रिज दार्शनिकों का मानना था कि दर्शन का कार्य केवल भाषा के वास्तविक प्रयोगों का वर्णन करना हैं इसलिए उन्होंने साधारण भाषा दर्शन के व्यवस्थित अध्ययन के लिए कोई सैद्धान्तिक आधार प्रदान नहीं किया। जैसा कि विट्गेन्सटाइन स्वयं कहते हैं कि, दर्शन किसी भी प्रकार से भाषा के वास्तविक प्रयोग में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है, यह केवल अंत में इसका वर्णन कर सकता हैं।[20] जबकि, ऑक्सफोर्ड दार्शनिकों ने साधारण भाषा को एक दार्शनिक पद्धति के रूप में स्वीकार करने के लिए निश्चित पृष्ठभूमि पर जोर दिया। प्रोफेसर ऋषिकान्त पाण्ड़ेय के अनुसार जे0एल0 आस्टिन मानते थे कि साधारण भाषा का व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक अध्ययन स्वयं में महत्वपूर्ण हैं और इस कारण उन्होंने इसे 'भाषाई संवृत्तिशास्त्र' (Linguistic Phenomenology)अथवा 'व्याकरण का वृहत् विज्ञान'(Expanded Science of Grammar) कहा।[21] ऑक्सफोर्ड दार्शनिकों का मत हैं कि साधारण भाषा का अध्ययन इस सीमा तक अनिवार्य है कि इसमें कई ऐसे सूक्ष्म अंतर सम्मिलित होते हैं, जिसे हम असावधानीपूर्वक नहीं समझ सकते हैं। इस कारण, साधारण भाषा का व्यवस्थित अध्ययन दार्शनिक समस्याओं के समाधान के लिए अपरिहार्य हैं। भाषाई दर्शन 1960 तक आंग्ल-भाषी देशों में प्रचलित था।

निष्कर्षः-

प्रस्तुत शोध-पत्र के सभी महत्वपूर्ण बिंदुओं का अध्ययन एवं मूल्यांकन करने के उपरान्त हम कह सकते हैं कि ऑक्सफोर्ड साधारण भाषा दार्शनिकों को परवर्ती विट्गेन्सटाइन और तार्किक भाववादियों द्वारा प्रस्तुत दो विपरीत धाराओं में एक मध्यम-मार्ग के रूप में रखा जा सकता हैं। एक ओर, वे परवर्ती विट्गेन्सटाइन की भांति साधारण भाषा का समर्थन करते हैं तो वहीं दूसरी ओर, वे तार्किक भाववादियों की भांति तार्किक गुणों और विमर्श के विभिन्न प्रकारों के सम्बन्ध में भी विश्वास करते हैं। इस प्रकार प्रस्तुत शोध-पत्र विश्लेषणात्मक दर्शन के स्वरूप एवं उद्भव से लेकर विकास के समस्त आयामों को विवेचित एवं विश्लेषित करने का प्रयास करता है, जिससे पाश्चात्य जगत में वर्णित विश्लेषणात्मक दर्शन की स्थिति एवं महत्व को गहनतापूर्ण ढ़ंग से समझा जा सकें।

संदर्भः-

1. क्विंटन, एंथोनी (1995). **'एनालिटिक फिलासफी'** , सम्पादित टी0 हॉंडेरिच, ''द ऑक्सफोर्ड कंपेनियन टू फिलासफी'', ऑक्सफोर्ड, पृ. 28-30.
2. सिमन्स, पीटर (2010). 'हूज फॉल्ट? द ओरिजिन्स एण्ड इविटेबिलिटी ऑफ द एनालिटिक-कॉन्टिनेन्टलरिट', **इण्टरनेशनल जनरल ऑफ फिलासॉफ़िकल स्टडीज** 9(3), पृ. 295-311.
3. कुलय्क, ऑलेक्जेंडर (2019). **'ए ब्रीफ इन्ट्रोडक्शन टू एनालिटिक फिलासफी'**, लिरा पब्लिशिंग, निप्रो, यूक्रेन, पृ. 17.
4. मार्टिनिच, ए0पी0 (2001). 'इन्ट्रोडक्शन', सम्पादित ए0 पी0 मार्टिनिच एण्ड डी0 सोसा, **''ए कंपेनियन टू एनालिटिक फिलासफी''**, ब्लैकवेल पब्लिशर्स, पृ. 1-5.
5. डमेट, एम0 (1994). **'ओरिजिन्स ऑफ एनालिटिकल फिलासफी'**, हावर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 14.
6. कुलय्क, ऑलेक्जेंडर (2019). **'ए ब्रीफ इन्ट्रोडक्शन टू एनालिटिक फिलासफी'**, लिरा पब्लिशिंग, निप्रो, यूक्रेन, पृ. 10-11.
7. उपर्युक्त, पृ. 19.
8. विट्गेन्सटाइन, एल0 (1961). **'टैक्टेटस लॉजिको फिलासॉफ़िकस'**, अनुवादक डी0एफ0 पियर्स एण्ड बी0एफ0 मैकगुइनेस, T. 1.

9. उपर्युक्त, T.1.2.
10. उपर्युक्त, T.2.
11. उपर्युक्त, T.3.
12. उपर्युक्त, T.4.
13. उपर्युक्त, T.4.01.
14. उपर्युक्त, T.5.
15. पाण्डेय, आर0 के0 (2008). **'स्पीच एक्ट एण्ड लिंग्विस्टिक कम्युनिकेशन'** कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, पृ. 20।
16. सर्ल, जे0आर0 (2001). 'जे0एल0 आस्टिन', सम्पादित ए0पी0 मार्टिनिच एण्ड डी0 सोसा, **''ए कंपेनियन टू एनालिटिक फिलासफी''**, ब्लैकवेल पब्लिशर्स, पृ. 218–230.
17. विट्गेन्सटाइन, एल0 (1953), **'फिलासॉफ़िकल इन्वेस्टीगेशन्स'**, पृ. 38.
18. उपर्युक्त, पृ. 109.
19. पाण्डेय, आर0के0 (2008). **'स्पीच एक्ट एण्ड लिंग्विस्टिक कम्युनिकेशन'** कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, पृ. 42.
20. विट्गेन्सटाइन, एल0 (1953), **'फिलासॉफ़िकल इन्वेस्टीगेशन्स'**, पृ. 124.
21. पाण्डेय, आर0के0 (2008). 'स्पीच एक्ट एण्ड लिंग्विस्टिक कम्युनिकेशन' कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, पृ. 44.